प्रहरन्ति महात्मानो विपक्षा अपि नेदृशे। गुणैस्समन्विते साधौ किं पुनर्यः स्वपक्षजः ॥१५॥
तदेतत्कथ्यतां सर्वं विस्तरान्मुनिपुङ्गव। दैत्येश्वरस्य चरितं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१६॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सतरहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

मैत्रेय श्रूयतां सम्यक् चरितं तस्य धीमतः। प्रह्लादस्य सदोदारचरितस्य महात्मनः॥१॥
दितेः पुत्रो महावीर्यो हिरण्यकशिपुः पुरा। त्रैलोक्यं वशमानिन्ये ब्रह्मणो वरदर्पितः॥२॥
इन्द्रत्वमकरोद्दैत्यः स चासीत्सविता स्वयम्। वायुरग्निरपां नाथः सोमश्चाभून्महासुरः॥३॥
धनानामधिपः सोऽभूत्स एवासीत्स्वयं यमः। यज्ञभागानशेषांस्तु स स्वयं बुभुजेऽसुरः॥४॥
देवाः स्वर्गं परित्यज्य तत्त्रासन्मुनिसत्तम। विचेरुरवनौ सर्वे बिभ्राणा मानुषीं तनुम्॥५॥
जित्वा त्रिभुवनं सर्वं त्रैलोक्यैश्वर्यदर्पितः। उपगीयमानो गन्धर्वैर्बुभुजे विषयान्प्रियान्॥६॥
पानासक्तं महात्मानं हिरण्यकशिपुं तदा। उपासाञ्चक्रिरे सर्वे सिद्धगन्धर्वपन्नगाः॥७॥
अवादयन् जगुश्चान्ये जयशब्दं तथापरे। दैत्यराजस्य पुरतश्चक्रुः सिद्धा मुदान्विताः॥८॥

लगे रहते थे और उनसे उनके वंश वाले दैत्य इतना दुष्कर द्वेष क्यों किये ?॥१३॥ धर्मात्मा, महाभाग, विष्णुभक्त तथा मत्सर रहित उनको दैत्यों ने इतना दुःख क्यों दिया ? आप इसे मुझे बतलायें ॥१४॥ महात्मागण तो इस प्रकार के गुण से सम्पन्न विपक्षी पर भी प्रहार नहीं करते हैं और जो अपने पक्ष का हो उसके विषय में तो कहना ही क्या है ?॥१५॥ हे मुनिपुङ्गव ! इन सारी बातों को आप विस्तार से बतलायें। मैं दैत्येश्वर प्रह्लादजी का सम्पूर्ण चरित सुनना चाहता हूँ ॥१६॥

इस प्रकार श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

हिरण्यकशिपु का दिग्विजय और प्रह्लाद चरित

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे मैत्रेय ! सदा उदार चरित वाले महात्मा प्रह्लाद का चरित आप अच्छी तरह से सुनें ॥१॥ प्राचीन काल में महापराक्रमी दिति के पुत्र हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त करने के कारण दृप्त होकर त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया ॥२॥ वह दैत्य स्वयं इन्द्र हो गया तथा स्वयं वह सूर्य, वायु, अग्नि, कुबेर तथा चन्द्रमा बन गया ॥३॥ वह स्वयं कुबेर, यम हो गया तथा यज्ञों के सम्पूर्ण भागों का स्वयं भोग करने लगा ॥४॥ हे मुनिश्रेष्ठ! देवगण स्वर्ग का परित्याग करके, मनुष्य का शरीर धारण करके पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥५॥ त्रैलोक्य को जित कर त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से दृप्त बना हुआ वह गन्धर्वों द्वारा की जाने वाली स्तुति का श्रवण करते हुए अपने मनोनुकूल विषयों का उपभोग करने लगा ॥६॥ मदपान करके मत्त रहने वाले महाकाय हिरण्यकशिपु की सभी सिद्ध, गन्धर्व तथा सर्पगण उपासना करते थे ॥७॥ सबके सब प्रसन्नता पूर्वक दैत्यराज के आगे कुछ लोग

तत्र प्रनृत्ताप्सरसि स्फाटिकाभ्रमयेऽसुरः। पपौ पानं मुदा युक्तः प्रासादे सुमनोहरे ॥९॥
तस्य पुत्रो महाभागः प्रह्लादो नाम नामतः। पपाठ बालपाठ्यानि गुरुगेहङ्गतोऽर्भकः ॥१०॥
एकदा तु स धर्मात्मा जगाम गुरुणा सह। पानासक्तस्य पुरतः पितुर्दैत्यपतेस्तदा ॥११॥
पादप्रणामावनतं तमुत्थाप्य पिता सुतम्। हिरण्यकशिपुः प्राह प्रह्लादममितौजसम् ॥१२॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

पठ्यतां भवता वत्स सारभूतं सुभाषितम्। कालेनैतावता यत्ते सदोद्युक्तेन शिक्षितम् ॥१३॥

प्रह्लाद उवाच

श्रूयतां तात वक्ष्यामि सारभूतं तवाज्ञया। समाहितमना भूत्वा यन्मे चेतस्यवस्थितम् ॥१४॥
अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिक्षयमच्युतम् । प्रणतोऽस्म्यन्तसन्तानं सर्वकारणकारणम् ॥१५॥

श्रीपराशर उवाच

एतन्निशम्य दैत्येन्द्रः सकोपो रक्तलोचनः। विलोक्य तद्गुरुं प्राह स्फुरिताधरपल्लवः ॥१६॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षस्तुतिसंहितम्। असारं ग्राहितो बालो मामवज्ञाय दुर्मते॥१७॥

गुरुरुवाच

दैत्येश्वर न कोपस्य वशमागन्तुमर्हसि। ममोपदेशजनितं नायं वदति तेसुतः ॥१८॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

अनुशिष्टोऽसि केनेदृग्वत्स प्रह्लादकथ्यताम्। मयोपदिष्टं नेत्येष प्रब्रवीति गुरुस्तव ॥१९॥

प्रह्लाद उवाच

शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः। तमृते परमात्मानं तात कः केन शास्यते॥२०॥

वाद्य बजाते थे तो कुछ लोग उसका जय-जयकार करते थे ॥८॥ जहाँ पर अप्सरायें नृत्य किया करती थीं वहाँ स्फटिक के बने, स्वच्छ शिला के मनोहर महल में बैठकर वह प्रसन्नता पूर्वक मदपान करता था ॥९॥ उसका प्रह्लाद नामक महाभाग्यवान बालक पुत्र गुरुकुल में जाकर बालोचित पाठों को पढ़ता था ॥१०। एक बार प्रह्लाद अपने गुरु के साथ मदपान में मस्त दैत्याधिपति अपने पिता के समक्ष गया ॥११॥ अपने चरणों में प्रणाम करने के लिए झुके हुए पुत्र को पिता (हिरण्यकशिपु) ने उठाकर महातेजस्वी प्रह्लाद से पूछा ॥१२॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** वत्स ! इतने समय तक अध्ययन में तत्पर रहकर तुमने जो कुछ पढ़ा है, उसका सारभूत अंश सुनाओ ॥१३॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे तात ! मेरे हृदय में जो कुछ सार रूप से अवस्थित है, उसे मैं आपको सुनाता हूँ, उसे आप सावधानी पूर्वक सुनें ॥१४॥ मैं आदि, मध्य तथा अन्त से रहित, अज, वृद्धि एवं क्षय से रहित, समस्त कारणों के भी कारण जगत् की स्थिति तथा अन्त करने वाले भगवान् अच्युत को प्रणाम करता हूँ ॥१५॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** यह सुनकर जिसके ओष्ठ क्रोध से काँप रहे थे तथा क्रोध के कारण लाल-लाल आँखों वाले दैत्येन्द्र ने उस गुरु को देखकर कहा ॥१६॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** दुर्बुद्धि ब्राह्मणाधम ! यह क्या ? मेरे अपमान से युक्त इस बालक को विपक्ष की स्तुति से युक्त असार शिक्षा देते हो ?॥१७॥ **गुरु ने कहा—** दैत्यराज ! आप क्रोध न करें। आपका यह पुत्र मेरे द्वारा उपदिष्ट बातों को नहीं कह रहा है ॥१८॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** वत्स प्रह्लाद ! बतलाओं तुमको इन बातों की शिक्षा किसने दी है ? तुम्हारे ये गुरु कहते हैं कि मैंने यह उपदेश नहीं दिया है ॥१९॥ **प्रह्लाद**

हिरण्यकशिपुरुवाच

कोऽयं विष्णुः सुदुर्बुद्धे यं ब्रवीषि पुनः पुनः । जगतामीश्वरस्येह पुरतः प्रसभं मम॥२१॥

प्रह्लाद उवाच

न शब्दगोचरं यस्य योगिध्येयं परं पदम्। यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः ॥२२॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

परमेश्वरसंज्ञोऽज्ञ किमन्यो मय्यवस्थिते। तथापि मर्तुकामस्त्वं प्रब्रवीषि पुनः पुनः ॥२३॥

प्रह्लाद उवाच

न केवलं तात मम प्रजानां स ब्रह्मभूतो भवतश्च विष्णुः ।
धाता विधाता परमेश्वरश्च प्रसीद कोपं कुरुषे किमर्थम् ॥२४॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

प्रविष्टः कोऽस्य हृदये दुर्बुद्धेरतिपापकृत्। येनेदृशान्यसाधूनि वदत्याविष्टमानसः ॥२५॥

प्रह्लाद उवाच

न केवलं मद्धृदयं स विष्णुराक्रम्य लोकानखिलानवस्थितः ।
स मां त्वदादींश्च पितस्समस्तान्समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥२६॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

निष्कास्यतामयं पाप शास्यतां च गुरोर्गृहे। योजितो दुर्मतिः केन विपक्षविषयस्तुतौ ॥२७॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तोऽसौ तदा दैत्यैर्नीतो गुरुगृहं पुनः। जग्राह विद्यामनिशं गुरुशुश्रूषणोद्यतः ॥२८॥
कालेऽतीतेऽपि महति प्रह्लादमसुरेश्वरः । समाहूयाब्रवीद्गाथा काचित्पुत्रकगीयताम् ॥२९॥

ने कहा— पिताजी ! सम्पूर्ण जगत् के हृदय में विद्यमान भगवान् विष्णु ही सबके उपदेष्टा हैं; उन परमात्मा को छोड़कर कौन किसी को कुछ सिखा सकता है ?॥२०॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** अरे मूर्ख ! सम्पूर्ण जगत् के स्वामी मेरे सामने यह विष्णु कौन है ? जिसका तुम बार-बार नाम लेते हो ॥२१॥ **प्रह्लाद ने कहा—** जिनके परमपद का योगिजन ध्यान करते हैं, तथा जो किसी शब्द का विषय नहीं बनता है, वह भगवान् विष्णु का परमपद है । जिनसे यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ है, जो सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं वे भगवान् विष्णु परमेश्वर हैं ॥२२॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** अरे मूर्ख ! मेरे रहते किसी दूसरे की परमेश्वर संज्ञा हो सकती है क्या ? फिर भी तुम मरने की इच्छा से उसका बार-बार नाम लेते हो ॥२३॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे तात ! वे ब्रह्मस्वरूप भगवान् विष्णु केवल मेरे ही नहीं, इन प्रजाओं के तथा आपके भी कर्ता और नियन्ता हैं; वे परमेश्वर हैं । आप प्रसन्न होइये, क्रोध क्यों करते हैं ?॥२४॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** अरे यह कौन पापी है जो इस मूर्ख के हृदय में प्रवेश करके बैठा है ? जिसके द्वारा आविष्ट मन वाला यह इस तरह की बातें करता है ?॥२५॥ **प्रह्लाद ने कहा—** पिताजी ! वे भगवान् विष्णु केवल मेरे हृदय में ही नहीं सम्पूर्ण जगत् में प्रविष्ट हैं । वे ही सर्वव्यापक हैं, तथा मुझको, आपको तथा सम्पूर्ण जगत् को तत् -तत् कर्मों में प्रवृत्त करते हैं ॥२६॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** इस पापी को यहाँ से ले जाओ और इसको गुरुगृह में ले जाकर अच्छी तरह से इसका प्रशासन करो । इस मूर्ख को किसी ने विपक्षी की स्तुति में लगा दिया है ॥२७॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हिरण्यकशिपु के इस तरह कहने पर दैत्य उसे गुरु के घर

प्राह्लाद उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् । कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥३०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दुरात्मा वध्यतामेष नानेनार्थोऽस्ति जीवता । स्वपक्षहानिकर्तृत्वाद्यः कुलाङ्गारतां गतः ॥३१॥

श्रीपराशर उवाच

इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन प्रगृहीतमहायुधाः । उद्यतास्तस्य नाशाय दैत्याः शतसहस्रशः ॥३२॥

प्राह्लाद उवाच

विष्णुः शस्त्रेषु युष्मासु मयि चासौ व्यवस्थितः । दैतेयास्तेन सत्येन माक्रमन्त्वायुधानि मे ॥३३॥

श्रीपराशर उवाच

ततस्तैश्शतशो दैत्यैः शस्त्रौघैराहतोऽपि सन् । नावाप वेदनामल्पामभूच्चैव पुनर्नवः ॥३४॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

दुर्बुद्धे विनिवर्तस्व वैरिपक्षस्तवादतः । अभयं ते प्रयच्छामि मातिमूढमतिर्भव ॥३५॥

प्रह्लाद उवाच

भयं भयानामपहारिणि स्थिते मनस्यनन्ते मम कुत्र तिष्ठति ।
यस्मिन्स्मृते जन्मजरान्तकादिभयानि सर्वाण्यपयान्ति तात ॥३६॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

भो भो सर्पाः दुराचारमेनमत्यन्तदुर्मतिम् । विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैः सद्यो नयत संक्षयम् ॥३७॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्तास्ते ततः सर्पाःकुहकास्तक्षकादयः । अदशन्त समस्तेषु गात्रेष्वतिविषोल्बणाः ॥३८॥

लाये । प्रह्लाद भी गुरु की सेवा में सदा संलग्न रहकर निरन्तर विद्याध्ययन करने लगे ॥२८॥ बहुत समय बीत जाने के बाद हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को बुलाया और कहा वत्स ! कोई गाथा सुनाओ ॥२९॥ **प्रह्लाद ने कहा—** जिनसे प्रकृति तथा पुरुष उत्पन्न हुए हैं, जिनसे यह चराचर विश्व उद्भुत है, जो इस सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं, वे भगवान् विष्णु हम पर प्रसन्न हों ॥३०॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** यह बड़ा दुष्ट है, इसे मार डालो । इसके जीवित रहने से कोई लाभ नहीं है । यह अपने पक्ष की हानि करने वाला है; यह अपने वंश के लिए अङ्गार स्वरूप है ॥३१॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हिरण्यकशिपु के द्वारा इस प्रकार का आदेश प्राप्त करके, सैकड़ों हजारों दैत्य अपने हाथ में बड़े-बड़े आयुध लेकर प्रह्लाद को मारने के लिए तैयार हो गये ॥३२॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे दैत्यों ! यह सत्य है कि भगवान् विष्णु चूकि शस्त्रों में, तुमलोगों में तथा मुझमें स्थित हैं । इसलिए मुझ पर आयुधों का कोई भी प्रभाव न हो ॥३३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् उन सैकड़ों दैत्यों तथा शस्त्र समूहों के द्वारा प्रहार किए जाने पर भी प्रह्लादजी को थोड़ी सी भी वेदना नहीं हुयी, वे नवीन-नवीन ही होते जाते थे ॥३४॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** मूर्ख, अब अधिक मूर्खता मत करो ! शत्रु की स्तुति करना छोड़ दो, तुम जाओ, मैं तुम्हें अभय प्रदान करता हूँ ॥३५॥ **प्रह्लादजी ने कहा—** जिन भगवान् विष्णु के स्मरण करने मात्र से जन्म, जरा तथा मृत्यु का भी भय नहीं रह जाता है, उनके हृदय में रहने पर किसी तरह का भय कहाँ रहेगा ?॥३६॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** अरे सर्पों ! इस दुराचारी तथा अत्यन्त दुर्मति को विष की ज्वाला से व्याप्त मुख से काटकर मार डालो ॥३७॥

स त्वासक्तमतिः कृष्णे दश्यमानो महोरगैः । न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याह्लादसुस्थितः ॥३९॥

सर्पा ऊचुः

द्रंष्ट्रा विशीर्णा मणयः स्फुटन्ति फणेषु तापो हृदयेषु कम्पः ।
नास्य त्वचः स्वल्पमपीह भिन्नं प्रशाधि दैत्येश्वर कार्यमन्यत् ॥४०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

हे दिग्गजाः सङ्कटदन्तमिश्रा घ्नतैनमस्मद्रिपुपक्षभिन्नम् ।
तज्जा विनाशाय भवन्ति तस्य यथाऽरणेः प्रज्वलितो हुताशः ॥४१॥

श्रीपराशर उवाच

ततः स दिग्गजैर्बालो भूभृच्छिखरसन्निभैः । पातितो धरणीपृष्ठे विषाणैर्वावपीडितः ॥४२॥
स्मरतस्तस्य गोविन्दमिभदन्ताः सहस्रशः । शीर्णा वक्षःस्थलं प्राप्य स प्राह पितरं ततः ॥४३॥

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः शीर्णा यदेते न बलं ममैतत् ।
महाविपत्तापविनाशनोऽयं जनार्दनानुस्मरणानुभावः ॥४४॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

ज्वाल्यतामसुरा वह्निरपसर्पत दिग्गजाः । वायो समेधयाग्निं त्वं दह्यतामेष पापकृत् ॥४५॥

श्रीपराशर उवाच

महाकाष्ठचयस्थं तमसुरेन्द्रसुतं ततः । प्रज्वाल्य दानवा वह्निं ददहुः स्वामिनोदिताः ॥४६॥

प्रह्लाद उवाच

तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम् ।
पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि शीतानि सर्वाणि दिशाम्मुखानि ॥४७॥

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— इस तरह से हिरण्यकशिपु के द्वारा कहे जाने पर तक्षक आदि अत्यन्त विषैले सर्पो ने प्रह्लादजी के सम्पूर्ण अङ्गों में काट लिया ॥३८॥ किन्तु प्रह्लादजी का मन तो श्रीभगवान् में लगा था, भगवत्स्मरण जन्य आह्लाद के कारण उनको अपने शरीर की स्मृति भी नहीं थी ॥३९॥ **सर्पों ने कहा—** दैत्यराज ! हमारे दंत टूट गये मणियाँ फट रहीं है । हमलोगों की फणाओं में सन्ताप हो रहा है, और हृदय काँप रहा है । किन्तु इसकी थोड़ी सी भी त्वचा नहीं कटी । अब आप हमें कोई दूसरा कार्य बतलायें ॥४०॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** दिग्गजों! तुमलोग अपने सङ्कीर्ण दाँतों को मिलाकर मेरे शत्रु पक्ष में मिले हुए इसको मार डालो । जिस तरह अरणि से उत्पन्न होने वाली अग्नि उसी को (अरणि को) ही जला डालती है, उसी तरह कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जिससे उत्पन्न होते हैं, उसी का विनाश कर डालते हैं ॥४१॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् पर्वत के शिखर के समान आकार वाले उन दिग्गजों ने उस बालक को पृथिवी पर गिराकर अपने दाँतों से उसे खूब मारा॥४२॥ किन्तु भगवान् गोविन्द का स्मरण करने वाले प्रह्लाद के वक्षःस्थल का स्पर्श होते ही उनके दाँतों के हजारों टुकड़े हो गये । उसके पश्चात् प्रह्लाद ने अपने पिता से कहा ॥४३॥ इन हाथियों के वज्र के समान कठोर दाँत टूट गये, उसमें हमारा कोई भी बल नहीं है; यह तो महाविपत्तियों तथा सन्तापों को विनष्ट करने वाले भगवान् जनार्दन के स्मरण का प्रभाव है ॥४४॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** दिग्गजों ! तुमलोग दूर हटो; दैत्यों तुमलोग आग जलाओ और वायु तुम उस अग्नि को प्रदीप्त करो ताकि इस पापी को जला डाला जाय ॥४५॥ **श्रीपराशर**

श्रीपराशर उवाच

अथ दैत्येश्वरं प्रोचुर्भार्गवस्यात्मजा द्विजाः। पुरोहिता महात्मानः साम्ना संस्तूय वाग्मिनः ॥४८॥

पुरोहिता ऊचु

राजन्नियम्यतां कोपो बालेऽपि तनये निजे। कोपो देवनिकायेषु तेषु ते सफलो यतः ॥४९॥

तथातथैनं बालं ते शासितारो वयं नृप। यथा विपक्षनाशाय विनीतस्ते भविष्यति॥५०॥

बालत्वं सर्वदोषाणां दैत्यराजास्पदं यतः। ततोऽत्र कोपमत्यर्थं योक्तुमर्हसि नार्भके ॥५१॥

न त्यक्ष्यति हरेः पक्षमस्माकं वचनाद्यदि। ततः कृत्यां वधायास्य करिष्यामोनिवर्त्तिनीम्॥५२॥

श्रीपराशर उवाच

एवमभ्यर्थितस्तैस्तु दैत्यराज पुरोहितैः। दैत्यैर्निष्कासयामास पुत्रं पावकसञ्चयात् ॥५३॥

ततो गुरुगृहे बालःस वसन्बालदानवान्। अध्यापयामास मुहुरुपदेशान्तरे गुरोः ॥५४॥

प्रह्लाद उवाच

श्रूयतां परमार्थो मे दैतेया दितिजात्मजाः। न चान्यथैतन्मन्तव्यं नात्र लोभादिकारणम् ॥५५॥

जन्मं बाल्यं ततः सर्वो जन्तुः प्राप्नोति यौवनम् । अव्याहतैव भवति ततोऽनुदिवसं जरा ॥५६॥

ततश्च मृत्युमभ्येति जन्तुर्दैत्येश्वरात्मजाः। प्रत्यक्षं दृश्यते चैतदस्माकं भवतां तथा॥५७॥

मृतस्य च पुनर्जन्म भवत्येतच्च नान्यथा। आगमोऽयं तथा यच्च नोपादानं विनोद्भवः ॥५८॥

गर्भवासादि यावत्तु पुनर्जन्मोपपादनम्। समस्तावस्थकं तावद्दुःखमेवावगम्यताम् ॥५९॥

महर्षि ने कहा— उसके पश्चात् अपने स्वामी की आज्ञा प्राप्त करके दैत्य बहुत बड़े काष्ठ की ढेर में अग्नि जलाकर उस प्रह्लाद को जलाने लगे ॥४६॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे तात ! वायु के द्वारा प्रदीप्त की गयी भी यह अग्नि मुझे जला नहीं रही है । मुझे तो सारी दिशाएँ ऐसी शीतल प्रतीत हो रही हैं जैसे मानों मेरे चारो ओर कमल बिछे हों।।४७॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** उसके पश्चात् शुक्राचार्य के पुत्र (षण्डामर्क आदि) हिरण्यकशिपु के पुरोहितों ने सामनीति से दैत्येन्द्र की प्रशंसा करके कहा ॥४८॥ **पुरोहितों ने कहा—** राजन् ! आप अपने इस पुत्र के प्रति कोप को नियन्त्रित कीजिए । आपको तो देवसमूह पर कोप करना चाहिए, क्योंकि आपका कोप उन्हीं पर सफल होगा॥४९॥ हमलोग आपके इस बालक को ऐसी शिक्षा देंगे कि यह आपके विपक्षियों के नाश का कारण बन जायेगा॥५०॥ दैत्यराज ! बालकपन तो सभी दोषों का आश्रय होता ही है, अतएव आपको इस बालक पर अत्यन्त कोप नहीं करना चाहिए ॥५१॥ यदि यह हमलोगों के उपदेश से भी विष्णु का पक्ष नहीं छोड़ेगा तो हमलोग कृत्या को उत्पन्न करके इसको विनष्ट कर देंगे ॥५२॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** अपने पुरोहितों द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर दैत्यराज ने असुरों द्वारा प्रह्लाद को उस अग्नि से बाहर निकलवाया ॥५३॥ उसके पश्चात् गुरु के घर में रहकर प्रह्लाद अध्ययन कर चुकने के पश्चात् दैत्य बालकों को बार-बार उपदेश देने लगे ॥५४॥ **प्रह्लाद ने कहा—** हे दैत्यपुत्रों ! तुमलोग मेरी बातों को सुनो । मैं सत्य कहता हूँ । मेरे ऐसा कहने में मेरा कोई लोभ आदि कारण नहीं है॥५५॥ सभी जीवों का जन्म होता है, उसके बाद बाल्यावस्था और युवावस्था होती है । फिर अव्याहत रूप से बुढ़ापा आती जाती है ॥५६॥ हे दैत्यराजकुमारों ! इसके कारण प्राणी मर जाता है । इस बात को मैं भी देखता हूँ और आपलोग भी देखते हैं ॥५७॥ इसके बाद शास्त्र बतलाता है कि पुनर्जन्म होता है और कोई भी वस्तु बिना उपादान कारण के नहीं उत्पन्न होती है ॥५८॥ जिनके कारण पुनर्जन्म होता है, वे गर्भवास आदि सारी अवस्थाएँ

क्षुत्तृष्णोपशमं तद्वच्छीताद्युपशमं सुखम् । मन्यते बालबुद्धित्वाद्दुःखमेव हि तत्पुनः ॥६०॥
अत्यन्तस्तिमिताङ्गानां व्यायामेन सुखैषिणाम् । भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां दुःखमेव सुखायते ॥६१॥
क्व शरीरमशेषाणां श्लेष्मादीनां महाचयः । क्व कान्तिशोभासौन्दर्यरमणीयादयो गुणाः ॥६२॥
मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ । देहे चेत्प्रीतिमान् मूढो भविता नरकेऽप्यसौ॥६३॥
अग्नेः शीतेन तोयस्य तृषा भक्तस्य च क्षुधा । क्रियते सुखकर्तृत्वं तद्विलोमस्य चेतरैः ॥६४॥
करोति हे दैत्यसुता यावन्मात्रं परिग्रहम् । तावन्मात्रं स एवास्य दुःखं चेतसि यच्छति॥६५॥
यावत कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् । तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥६६॥
यद्यद्गृहे तन्मनसि यत्र तत्रावतिष्ठतः । नाशदाहोपकरणं तस्य तत्रैव तिष्ठति ॥६७॥
जन्मन्यत्र महद्दुःखं म्रियमाणस्य चापि तत् । यातनासु यमस्योग्रं गर्भसङ्क्रमणेषु च ॥६८॥
गर्भेषु सुखलेशोऽपि भवद्भिरनुमीयते । यदि तत्कथ्यतामेवं सर्वं दुःखमयं जगत्॥६९॥
तदेवमतिदुःखानामास्पदेऽत्र भवार्णवे । भवतां कथ्यते सत्यं विष्णुरेकः परायणः ॥७०॥
मा जानीत वयं बाला देही देहेषु शाश्वतः । जरायौवनजन्माद्या धर्मा देहस्य नात्मनः ॥७१॥
बालोऽहं तावदिच्छातो यतिष्ये श्रेयसे युवा । युवाहं वार्द्धके प्राप्ते करिष्याम्यात्मनो हितम्॥७२॥

दुःख स्वरूप ही है, यह आपलोग जानें ॥५९॥ मनुष्य अज्ञान वशात् भूख, प्यास तथा शीत आदि की शान्ति को सुख रूप मानता है, क्योंकि वे सबके सब दुःख स्वरूप ही हैं ॥६०॥ वात आदि दोषों के कारण जिनके अङ्ग सिकुड़ जाते हैं, वे लोग व्यायाम के द्वारा सुख प्राप्त करना चाहते हैं । उसका कारण यह है कि भ्रम के कारण जिनकी दृष्टि ढँक गयी है, उनको दुःख ही सुख के समान प्रतीत होता है ॥६१॥ शरीर तो कफ आदि घृणित पदार्थों का समूह स्वरूप है, उसमें कान्ति शोभा, सौन्दर्य तथा रमणीयता आदि गुण कहाँ से आ सकते हैं; फिर भी मनुष्य भ्रम के कारण शरीर को रमणीयता आदि का आश्रय मानने लगता है ॥६२॥ यदि किसी अज्ञानी की मांस, असृक् (खून) पूय (पीब) विट् (विष्टा) मूत्र, स्नायु, मज्जा तथा अस्थियों (हड्डियों) के समूह रूप इस शरीर में प्रेम है तो उसको नरक भी अच्छा लग सकता है ॥६३॥ ठंढी के कारण अग्नि की सुखरूपता प्रतीत होती है, प्यास के कारण जल की सुखरूपता है, भूख के कारण भात की सुखप्रदता है, और अग्नि आदि भी अपने प्रतियोगी जल आदि के कारण सुखद प्रतीत होते हैं ॥६४॥ हे दैत्यकुमारों ! जितना ही अधिक विषयों का परिग्रह किया जाता है उतना ही अधिक चित्त में दुःख बढ़ता जाता है ॥६५॥ जीव जितना ही अधिक अपने मन को प्रिय लगने वाली वस्तुओं का संग्रह करता है, उसके हृदय में उतने ही अधिक शल्य स्थिर होते जाते हैं ॥६६॥ मनुष्य जहाँ कहीं भी रहे, उनके घर में विद्यमान जो धनधान्यादि पदार्थ होते हैं, उन वस्तुओं के नाश तथा दाह के साधन भी उसी के साथ रहा करते हैं । (अर्थात् घर में सुरक्षित वस्तु के भी नाश इत्यादि का भय बना ही रहता है ।)॥६७॥ इस जन्म में तो अनेक प्रकार के कष्ट सहने ही पड़ते हैं, मरते समय भी बहुत अधिक कष्ट होता है, इसी तरह यमयातनाओं में भी भयङ्कर कष्ट सहना पड़ता है, तथा गर्भवास में भी कष्ट होता है ॥६८॥ यदि तुम्हें गर्भवास में थोड़ा सा भी सुख होता हो तो उसे बतलाओ, इस तरह सारा संसार दुःखमय ही है ॥६९॥ यह संसार सागर दुःखों से परिपूर्ण है, यह मैं आपलोगों से सत्य कहता हूँ । भगवान् विष्णु ही एकमात्र रक्षक हैं ॥७०॥ आपलोग यह मत जाने कि हमलोग हमेशा बालक ही रहेंगे, जरा, यौवन तथा जन्म आदि आत्मा के ही धर्म है, शरीर में रहने वाला आत्मा तो नित्य है, उसके ये धर्म नहीं हैं ॥७१॥ अभी मैं बालक हूँ अतएव अपनी इच्छानुसार समय बिता लूँ, युवा होने पर कल्याणप्राप्ति के लिए

वृद्धोऽहं मम कार्याणि समस्तानि न गोचरे। किं करिष्यामि मन्दात्मा समर्थेन न यत्कृतम् ॥७३॥
एवं दुराशया क्षिप्तमानसः पुरुषः सदा । श्रेयसोऽभिमुखं याति न कदाचित्पिपासितः ॥७४॥
बाल्ये क्रीडनकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः। अज्ञा नयन्त्यशक्त्या च वार्द्धकं समुपस्थितम् ॥७५॥
तस्माद्बाल्ये विवेकात्मा चतेत श्रेयसे सदा । बाल्ययौवन वृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः ॥७६॥
तदेतद्वो मयारत्यातं यदि जानीत नानृतम् । तदस्मत्प्रीतये विष्णुः स्मर्यतां बन्धमुक्तिदः ॥७७॥
प्रयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम् । पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ॥७८॥
सर्वभूतस्थिते तस्मिन्मतिर्मैत्री दिवानिशम् । भवतां जायतामेवं सर्वक्लेशान्प्रहास्यथ ॥७९॥
तापत्रयेणाभिहतं येदतदखिलं जगत् । तदा शोच्येषु भूतेषु द्वेषं प्राज्ञः करोति कः ॥८०॥
अथ भद्राणि भूतानि हीनशक्तिरहं परम् । मुदं तदापि कुर्वीत हानिर्द्वेषफलं यतः ॥८१॥
वद्धवैराणि भूतानि द्वेषं कुर्वन्ति चेत्ततः । सुशोच्यान्यतिमोहेन व्याप्तानीति मनीषिणाम् ॥८२॥
एते भिन्नदृशां दैत्या विकल्पा कथिता मया । कृत्वाभ्युपगमं तत्र संक्षेपः श्रूयतां मम ॥८३॥
विस्तारः सर्वभूतस्य विष्णोः सर्वमिदं जगत् । द्रष्टव्यमात्मवत्तस्मादभेदेन विचक्षणैः ॥८४॥
समुत्सृज्यासुरं भावं तस्माद्यूयं तथा वयम् । तथा यत्नं करिष्यामो यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ॥८५॥
या नाग्निना न चार्केण नेन्दुना च न वायुना । पर्जन्यवरुणाभ्यां वा न सिद्धैर्न च राक्षसैः ॥८६॥

प्रयास करूँगा, युवा होने पर अभी मैं युवा हूँ, वृद्ध होने पर आत्म कल्याण के लिए प्रयास करूँगा । वृद्ध होने पर मैं अब तो वृद्ध हो गया, मेरी इन्द्रियाँ कार्यों में प्रवृत्त नहीं होती है, अब तो मैं शिथिल हो गया हूँ, क्या कर सकता हूँ ? जब मैं समर्थ था उस समय तो कुछ किया ही नहीं; इस तरह से दुराशाग्रस्त व्यक्ति अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर कभी भी प्रवृत्त नहीं हो पाता है ॥७२-७४॥ अज्ञानी लोग बाल्यावस्था में खेलकूद में ही समय बिता देते हैं, युवावस्था में विषयोपसेवन में अपना समय बिताते हैं तथा वृद्धावस्था आ जाने पर व्यर्थ में ही अपना समय बिताते हैं॥७५॥ अतएव विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह बाल्यावस्था में ही आत्मकल्याण के लिए प्रयास करे, वह बाल्य, युवा तथा वृद्धावस्था की अपेक्षा न करे ॥७६॥ अतएव मैंने जो आपलोगों से कहा है, उसे यदि आपलोग मिथ्या नहीं मानते हैं तो मेरी ही प्रसन्नता के लिए संसार के बन्धन से मुक्ति दिलाने वाले भगवान् विष्णु का आप लोग स्मरण करें॥७७॥ श्रीभगवान् का स्मरण करने में कोई परिश्रम भी नहीं है, स्मरण करने मात्र से वे शुभ फल प्रदान करते हैं, जो रात-दिन श्रीभगवान् का स्मरण करता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥७८॥ सभी भूतों में स्थित श्रीहरि में तुमलोगों की बुद्धि लगी रहे, और उनमें तुमलोगों का निरन्तर प्रेम बना रहे; ऐसा करने से आपलोगों के सारे कष्ट विनष्ट हो जायेंगे ॥७९॥ यदि यह सम्पूर्ण जगत् तापत्रय (आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक) से सन्तप्त है तो, कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो इन शोचनीय जीवों से द्वेष करे ॥८०॥ यदि ऐसा प्रतीत हो कि और जीव तो आनन्द में हैं मैं ही अत्यन्त शक्तिहीन हूँ, तो भी द्वेष नहीं करना चाहिए, क्योंकि द्वेष का फल तो कष्ट ही होता है ॥८१॥ यदि कोई व्यक्ति वैर की भावना से युक्त होने के कारण द्वेष भी करता है तो भी मनीषियों को चाहिए कि वे उसको अत्यन्त शोचनीय ही मानें ॥८२॥ हे दैत्यों ! मैंने यह भिन्न-भिन्न दृष्टि वालों के लिए उपायों का निरूपण किया है, उसको स्वीकार करके उसका संक्षेप सारांश आप लोग सुनें ॥८३॥ यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णु का विस्तार है, अतएव विज्ञ पुरुषों को चाहिए कि वे सम्पूर्ण जगत् को अपने ही समान देखें ॥८४॥ अतएव आपलोग तथा हमलोग, आसुरभाव का परित्याग करने का ऐसा प्रयास करें कि परम शान्ति की प्राप्ति हो ॥८५॥ जो

न यक्षैर्न च दैत्येन्द्रैर्नोरगैर्न च किन्नरैः। न मनुष्यैर्न पशुभिर्दोषैर्नैवात्मसम्भवैः ॥८७॥
ज्वराक्षिरोगातीसारप्लीहगुल्मादिकैस्तथा । द्वेषेर्ष्यामत्सराद्यैर्वा रागलोभादिभिः क्षयम् ॥८८॥
न चान्यैर्नीयते कैश्चिन्नित्या यात्यन्तनिर्मला। तामाप्नोत्यमले न्यस्य केशवे हृदयं नरः ॥८९॥

असारसंसारविवर्तनेषु मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि ।
सर्वत्र दैत्यास्समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥९०॥
तस्मिन्प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्मार्थकामैरलमल्पकास्ते ।
समाश्रिताद्ब्रह्मतरोरनन्तानिः संशयं प्राप्स्यथ वै महत्फलम् ॥९१॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अठारहवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

तस्यैतां दानवाश्चेष्टां दृष्ट्वा दैत्यपतेर्भयात्। आचचख्युः स चोवाच सूदानाहूय सत्वरः ॥१॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

हे सूदा मम पुत्रोऽसावन्येषामपि दुर्मतिः। कुमार्गदेशिको दुष्टो हन्यतामविलम्बितम् ॥२॥
हालाहलं विषं तस्य सर्वभक्षेषु दीयताम्। अविज्ञातमसौ पापो हन्यतां मा विचार्यताम् ॥३॥

परम शान्ति, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ, वरुण, सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्यराज, सर्प, किन्नर, मनुष्य, पशु तथा अपने में ही उत्पन्न होने वाले दोषों, ज्वर, नेत्ररोग, अतिसार, प्लीहा तथा गुल्म आदि रोगों, अथवा द्वेष, मत्सर, ईर्ष्या, राग तथा लोभ आदि से कभी क्षीण नहीं होती है। जो नित्य तथा अत्यन्त निर्मल है, उस परमा शान्ति को मनुष्य अपने हृदय को भगवान् केशव में लगाकर प्राप्त कर लेता है। दैत्यों ! तुमलोग असार संसार के विषयों में कभी सन्तुष्ट न हो यह मैं आपलोगों से आग्रह पूर्वक कहता हूँ। हे दैत्यों ! आपलोग सर्वत्र समदृष्टि करें। समदृष्टि ही भगवान् अच्युत की आराधना है ॥९०॥ उन भगवान् अच्युत के प्रसन्न हो जाने पर संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता है। आपलोग धर्म, अर्थ तथा काम की कभी इच्छा न करें। वे अत्यन्त अल्प पुरुषार्थ हैं। ब्रह्मरूपी महावृक्ष का आश्रय लेने पर आपलोग निःसन्देह रूप से मोक्ष जैसे महाफल को प्राप्त कर लेंगे ॥९२॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

प्रह्लाद को मारने के लिए विष, शस्त्र तथा अग्नि आदि का प्रयोग तथा प्रह्लाद कृत भगवत् स्तुति

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— प्रह्लाद की इस प्रकार की चेष्टा को देखकर तथा दैत्यराज से डरकर दैत्यों ने उनको सारा वृत्तान्त कह सुनाया और शीघ्र ही दैत्यराज ने रसोइये को बुलाकर कहा ॥१॥ **हिरण्यकशिपु ने कहा—** ऐ सूदों (रसोइयों) यह मेरा पुत्र दुर्मति है यह दूसरों को भी कुमार्ग पर चलने का उपेदश देता है। अतएव इसको तुमलोग शीघ्र मार डालो ॥२॥ तुमलोग इसके समस्त खाद्य पदार्थों में हालाहल विष मिलाकर दो किन्तु उसे इसका पता नहीं चलना चाहिए। इस पापी को बिना विचार किए ही तुमलोग मार डालो ॥३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने**